भगवत् कृपा

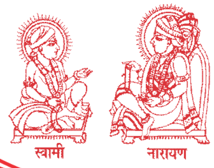

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-2, अंक-11-12	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-15.00
मंगलवार, 12 दिसं.' 78	मानद सहसम्पादक: श्री महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 1.25

कृपावतार स्वामिश्री सहजानंदजी

विनाशकाले विपरीतबुद्धि-

यज्ञ समाप्त करके महाराज ने अहमदाबाद की ओर प्रस्थान किया। उस समय अहमदाबाद वामपंथियों का बड़ा पीठ स्थान था। राज्य की बागडोर पेशवा के हाथ में थी। पेशवा का प्रतिनिधि था विठ्ठलभाऊ। उनको अहिंसक यज्ञ अच्छा नहीं लगता था-शास्त्रसंगत नहीं लगता था। इसी समय विठ्ठलभाऊ के पिता का निधन हो गया। अश्रद्धा और वहम का संगम हुआ; द्वेषी ब्राह्मणों ने और वामपंथियों ने इस प्रसंग का पूर्ण लाभ उठाया। और विठ्ठलभाऊ को कहा, ''देखिए, यह सहजानंद ब्राह्मण नहीं है, किन्तु शूद्र है। इन को यज्ञ करने का शास्त्रोक्त अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त यज्ञ में पशुबलि नहीं दी जा रही है अतः इस नगर की अधिष्ठात्री देवी रुष्ट है। आप नगर के अधिकारी हो, अतः देवी ने रुष्ट होकर आपके पिता का बलिदान लिया है। जान बूझ कर सहजानंद ने आपके पिताश्री की हत्या करने के लिये ऐसा अवैदिक यज्ञ किया था। ब्राह्मणों को यह शूद्र उपदेश दे रहा है यह भी अधर्म है। यदि यह परिस्थिति चलती रहेगी तो पेशवा का साम्राज्य भी नष्ट हो जायगा।''

विठ्ठलभाऊ को यह सारी कहानी सत्य प्रतीत हुई। उनको भयंकर क्रोध आया और सहजानंद स्वामी की हत्या करने का उन्होंने स्वतः निर्णय ले लिया। इन्होंने भक्त होने का दम्भ किया। साग्रह भगवान को अपने दरबार में -भद्र में बुलाया। भगवान को बैठने का उच्च स्थान बनवाया। उसके नीचे एक टंकी थी। इसमें उबलता हुआ तैल था। इस टंकी के ऊपर खोखला आसन रखा और उस पर गद्दे-तकिये आदि रख दिये। उद्देश्य यह था की जैसे ही महाराज वहां बिराजमान हो आसन टूट पड़े और उबलते हुए तैल में गिर कर महाराज का शरीर जल जाय।

महाराज सतंमंडली साथ भद्र गये। वहां चौकीदार ने कहा, केवल स्वामी सहजानंद जा

सकते है, और किसी को प्रवेश नहीं करना है। किन्तु दंडी देवानंदस्वामी ने तो चौकीदार को अलग करके प्रवेश पा लिया। विठ्ठलभाऊ ने चेहरे पर झूठा भक्तिभाव दिखाया और महाराज को उस उच्च आसन पर बिराजने के लिये कहा। किन्तु प्रभु तो अंतर्यामी और सर्वज्ञ थे। वे इस छलना में नहीं फंसे। उन्होंने कहा, ''ऐसे उच्च स्थान पर बैठने का अधिकार आपका-श्रीमंत सरकार का है, हमारा नहीं। हम तो साधु हैं। हमारे लिये तो यह छोटा स्थान ही ठीक है।'' यूं कह कर वह छोटे आसन पर बैठने लगे और बैठते बैठते महाराज ने अपने हाथ में जो छड़ी थी वह उस उच्च आसन पर टेक दी। यकायक भयंकर आवाज हुआ और आसन गद्दे तकिये सब कुछ टंकी में गिर गये। इतना ही नहीं, उबलते हुए तैल का धुंआ बाहर आने लगा। षडयंत्र स्पष्ट हो गया। देवानंदस्वामी यह देखकर ''डट्टन सो पट्टन कर डालू'' इस प्रकार शाप देने को उद्युक्त हुए। किन्तु सहजानंदस्वामी ने उनको रोक लिया।

इस ओर विठ्ठलभाऊ ने देखा कि अपनी कपट जाल खुल गई है। अतः वह क्रोध से मूढ हो गया और महाराज को कहने लगा-

'अभी अभी इधर दरवाजे से अहमदाबाद शहर छोड़कर चले जाइए और पुनः इस शहर में अपना पाँव मत रखना।' महाराज ने पूर्ण स्वस्थता से कहा, 'कब तक मुझे अहमदाबाद में पांव नहीं रखना है?' विठ्ठलभाऊ ने कहा, ''जब तक अहमदाबाद मे ंपेशवा का शासन हो।''

विनाशकाल समीप आ गया था अतः विठ्ठलभाऊ की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। इनकी वाणी आगामी विनाश की जैसे पूर्व सूचना थी ! भगवान स्वामिनारायण ने शीघ्र अमहदाबाद छोड़ दिया और अल्प समय में ब्रिटिश शासन ने वसाई की संधि की और अहमदाबाद शहर पर पेशवा का जो शासन था इसका अन्त हो गया और उसको ब्रिटिश शासन ने ले लिया।

डभाण में यज्ञ-

इसके पूर्व भगवान ने जेतलपुर में ही दूसरा यज्ञ करने का निर्णय किया था। किन्तु विठ्ठलभाऊ ने स्वामिनारायण को पकड़ने के लिये आदमी भेजे थे। महाराज तो वहां नहीं थे। पास अन्य गांव में थे। उनको जब यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने संघर्ष टालने के लिये एक रात में ही यज्ञ का सारा सामान डभाण भेज दिया। डभाण खेडा जिल्ले के नडियाद शहर के पास का गांव था। वहां ब्रिटिश शासन था। वहां के अंग्रेज अफसरों को स्वामिनारायण का माहात्म्य ज्ञात था। इन्होंने भगवान का असाधारण आदर और सत्कार किया और अत्यंत प्रसन्नता से यज्ञ करवाने की छुट्टी दी और सब प्रकार से सहकार देने का वचन दिया।

महाराज ने डभाण में 18 दिन का महारुद्र यज्ञ करवाया। लाखों ब्राह्मणों को भोजन दिया। यहां भी ईर्ष्या युक्त और द्वेष युक्त कुछ एक ब्राह्मणों ने विघ्न डालने के प्रयत्न किये। काफी मात्रा में घी तालाब में बहा दिया। और ''घी नहीं है, घी नहीं है'' करके बड़ा शोर मचाया। उद्देश्य था महाराज की प्रतिष्ठा नष्ट हो। किन्तु महाराज ने चारों ओर काठीओं को चौकीदार के रूप में लगा दिये और स्टोर, यज्ञ, मंडप आदि स्थानों की रक्षा करने के लिये अपने सत्संगी ब्राह्मणों को

कह दिया। बाद में स्वयं स्टोर में गये तो देखा कि घी के केवल दो ही पात्र है। उस पर इन्होंने कर (हाथ) स्पर्श किया और भक्त ब्राह्मणों को कहा कि इसमें से चाहे जितना घी निकालते रहना, कभी कमी नहीं होगी। वचन-सिद्ध के ये वचन सिद्ध होकर ही रहे। ब्राह्मण लोग आश्चर्य चकित रह गये और महाराज की प्रशंसा मन ही मन करने लगे। उस समय लुटेरे का सरदार जोबन पगी था। यज्ञ में वह महाराज की घोड़ी चुराने को आया। किन्तु वहां जितने घोड़े थे वहां पर गया तो महाराज प्रत्येक घोड़े के पास दिखाई पडे। वह सन्न सा हो गया और महाराज के प्रति झुक गया। महाराज ने उसके सारे संकल्प पूरे किये और........वह महाराज का भक्त बन गया !

मूलजी शर्मा को भागवती दीक्षा–

यज्ञ निर्विघ्नता से समाप्त हुआ पौष मास की पूर्णिमा के दिन। पूर्णाहुति हुई उसी दिन मंगल प्रभात बेला में महाराज ने अपने धाम स्वरूप भक्त राज श्री मूलजी शर्मा को भागवती दीक्षा लेने के लिये बुलाये, यज्ञ मण्डप में अपने समक्ष बिठाये और समग्र सभा को सम्बोधित करते हुए कहा-

''भादरा में प्रगट यह मूलजी शर्मा जो हमारे रहने का धाम-अनादि मूल अक्षरब्रह्म है, जो हमारी मूर्ति का अखण्ड दर्शन कर रहे हैं, जो हमारे उत्तम भक्त हैं उनकी भागवती दीक्षा है........'' इस प्रकार मूलजी शर्मा का अपार और अपरिमित महिमा प्रस्तुत करके महाराज ने उन्हें भागवती महादीक्षा दी। श्रीमूलजी शर्मा तीन गुण से पर थे और उनको प्रकृति पुरुष आदि किसी भी प्रकार की उपाधि नहीं थी अतः श्रीजी महाराज ने उन्हें साधु के रूप में 'गुणातीतानंद' का अभिधान दिया।

इस प्रकार अपने साथ ओतप्रोत-एक रूप अनन्त भगवान के भगवान तथापि सर्वथा स्वामि सेवक भाव में रहने वाले अनादि मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी को श्रीजी महाराज ने वि.सं. 1866 पौष पूर्णिमा के शुभ दिन 'डभाण' गांव में एक अद्भुत यज्ञ करने के बाद अपूर्व समारोह का आयोजन करके भागवती दीक्षा दी। यह प्रसंग सामान्य दीक्षा का प्रसंग नहीं था। वास्तव में महाराज ने यह दीक्षा द्वारा-गुणातीतानंदस्वामी के माध्यम से सारी ये मानवजाति के लिये सर्व काल के लिये अखण्ड कल्याण का द्वार खुल्ला कर दिया था। अभी भी यह दिव्य गुणातीत-परम्परा रूपी विरासत नित्य विद्यमान है और रहनेवाली है। अक्षरपुरुषोत्तम सम्प्रदाय की यह विशिष्टता है। इस पृथ्वी पर अपने अक्षरधाम की रीति, नीति और स्थिति प्रवर्तित कर के असंख्य भक्तों को त्रिगुणात्मिका माया, तीन देह और तीन अवस्थाओं से पर जो शुद्ध ब्राह्मीस्थिति है उसको प्राप्त कराने को महाराज की इच्छा थी। परिणामस्वरूप अपने साथ श्रीजी गुणातीतानंदस्वामी को दीक्षा दी तब वे कितने प्रसन्न हुए होंगे इसका अनुमान हम कर सकते हैं।

पौष मास की यह पवित्र पूर्णिमा एक प्रारम्भ दिन था-एक उत्क्रान्ति का। यह कोई सामान्य उत्क्रान्ति की बात नहीं है किन्तु एक सामान्य मानव को महामानव में परिवर्तन की उदात्त प्रक्रिया की बात है। गुणातीत महाराज के सर्वस्व थे। अतः इनके दीक्षा-समारोह की भव्यता अद्वितीय थी। इस समय श्रीजी महाराज ने

अठारह दिन तक लगातार लाखों भक्तों को भोजन कराया, यज्ञ में भव्य आहुतियां दी और ब्राह्मणों को लाखों रुपये की दक्षिणा दी। परम्परागत-जड़ ब्राह्मणों का प्रचंड विरोध था; किन्तु महाराज की कार्य क्षमता अद्वितीय थी, योजना शक्ति अद्‌भुत थी और ऐश्वर्य और प्रताप प्रभावक था। अतः यह सारा महोत्सव असाधारण साफल्य से सम्पन्न हुआ। प.पू. स्वामिश्री योगीजी महाराज के शब्दों में 'डभाण' के तीर्थ स्थान का महिमा गोंडल की अक्षर देरी सरीखा अत्यधिक है।

श्रीजी महाराज के आदेश को शिरोबंध मान कर श्री मूलजी शर्मा ने अब नवदीक्षित 'गुणातीतानंदस्वामी, के रूप में सत्संग में प्रवेश किया और श्रीजी महाराज के पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरूप की शुद्ध निष्ठा के लिये अपना मूल अक्षरस्वरूप परिचय करवाया और मुमुक्षुओं को अक्षरस्वरूप बनाकर पुरुषोत्तम की भक्ति मार्ग की प्रवृत्ति का प्रारम्भ किया। अक्षरब्रह्म का जो सम्बन्ध बड़े बड़े अवतारों को भी नहीं है मुमुक्षुओं को हुआ यह वास्तव में हमारे लिये अहोभाग्य ही मानना चाहिए।

क्रमशः

SYenthesis of Yoga

If is not necessary to state that every system of yoga leads to the mastery of one particular aspect of life with which it started. The Hatha yoga begins with the physical body and ends up by mastering physical powers. The Raja Yogin practises meditation, concentration and pranayam which confers upon him chitta shuddhi or mind control. The Laya Yogin starts with psychic Being and develops psychological and psychical powers. The Adhyatma yogin occupies himself consciousness and obtains perfection of the various powers of consciousness. The Purna yogin reconciles all the phases-body, mind, life, prana and consciousness-leading to the highest developments of powers and unifies them in a transcendental unity and oneness with Eternal Brahman and Parabrahman. It is here that we have the perfection of all the aspects. The aim is not to acquire supernatural powers alone but the realisation of the Self and Supreme.

If one begins on the path of Self realisation, with body or mind or chitta or prana or life or consciousness as the starting point, perfection is attained in keeping with the inherent law of nature of that particular instrument in his realisation. The subtle traits of the instruments are not destroyed. Memory is the eternal storehouse and reservior of all the impressions one has accumulated during his innumerable births. As a consequance, vasanas of the causal body sometimes jump up to the forefront and the yogin falls down from his spiritual status. If this is so, what we are to say of 'Mahakaran' body with its state of Turiya or illuminated consciousness with intuitive mind !! The utmost purification and perfection attained by the synthesis of yoga aims at reconciling the entire basis and the

stages of development of the various levels of consciousness. All the six minds and six Darshans as said by Lord Shiva in Mahanirvna Tantra have to be unified into an integral and transcendental unity, So that His delight or bliss or power or knowledge or life or action and Divine nature works out the Divine plan according to the Divine will with perfect equality, harmony and unity. This difficulty has been solved easily by the introduction of the new chapter of Akshar-Brahman. Infinite grace in the form of Shakti-pat takes upon itself full responsibility for the purification of the jiva provided the empodied soul has surrendered itself to the Real Master in full trust and love. A certain existential awareness which is not actually ego, but a subtle form of ego, as for example, the cognisance of one's existence as a maha tyagi or maha-tapasvi or siddha pursha or a realised soul or even Jivanmukta exists. This is to be transcended and it is here a synthesis of yoga comes in. In existential awareness some sort of a spiritual ambition or 'pratishtha' disturbs even siddha yogin and he cannot work out in masses or manifest his powers in general. He can, of course, enjoy himself and work in a limited sphere. It was for this reason, Lord Swaminarayan emphatically advocated and opened this royal path for ever by maintaining spiritual hierachy or Divine Masters from the original disciplic succession for mastering the integral yoga. In essence, the virtue of the real tantra lies in the above dual (Yugal) upasana, which is directly or indirectly concerned with the absolute eternal order.

From : The Real Essence of Tantra

प्रार्थना में........

* प्रार्थना में हमें जो कुछ चाहिए उसको प्राप्त करने का हमारा प्रयत्न नहीं है, किन्तु परमात्मा हमारे द्वारा जो कुछ करवाना चाहता है उनको इसके लिये अवकाश देने का प्रयत्न है।

* प्रार्थना में भगवान के पास कुछ मांगने को नहीं है किन्तु उनको सहकार देना है।

* 'हमने जो सोचा है वैसा ही हो' यह प्रार्थना में नहीं चाहना है, किन्तु भगवान की इच्छा किस प्रकार स्वीकार करें यह खोजना है।

* प्रार्थना में हमारा उद्देश्य भगवान के मन को बदलने का नहीं है किन्तु हमारी वृत्तियां को बदलने का है।

* प्रार्थना अर्थात् प्रभु की सन्निधि में चिंतन करना।

* हमारे चैतन्य का स्तर परमात्मा के विचारों की भूमिका के प्रति ऊँचा उठे तब जीवन की घटनाएं सही परिपार्श्व में हम समझ सकते हैं।

* प्रभावक प्रार्थना में-

  – परमात्मा को पहचानने की गहरी अभीप्सा होती है,

– सम्पूर्णतया ईश्वर में श्रद्धा रखने की आतुरता होती है,

– अपनी पकड़ छोड कर जैसे परमात्मा चाहे वैसे इनको करने देने की तत्परता होती है।

– मंक एल रोय

पत्रिका के ग्राहकों को........

* आपकी 'भगवत्कृपा-The Divine Grace' पत्रिका का वार्षिक शुल्क इस दिसम्बर मास में पूर्ण होता है। यह ख्याल में रहे कि नये वर्ष में (अर्थात् जनवरी-1979 में) आपकी पत्रिका विशेष **वार्षिक शुल्क रुपया 20** के साथ आपके पास पहुँचेगी।

* यदि आप पत्रिका के ग्राहक के रूप में चालू रहना चाहते हो तो पत्रिका का वार्षिक शुल्क रुपया 20 कार्यालय पर शीघ्र भेज दीजिए। यदि किसी कारणवश आप ग्राहक रहना नहीं चाहते हो तो इस प्रकार की सूचना भेजने का कष्ट करें।

* जिन्हें इस वर्ष में पत्रिका बिना मूल्य भेजी गई है वे यह सूचित करने का कष्ट करें कि यह पत्रिका पढ़ने का उनको रस है या नहीं। यदि रस-रुचि नहीं हो तो पत्रिका बिना मूल्य भेजने का प्रबंध हम न करें।

* जो ग्राहक रहना या होना चाहते है वे निम्नलिखित बातें अवश्य ध्यान में रखें–

* पत्रिका के नये वर्ष का प्रारम्भ हर वर्ष की जनवरी से होता है।

* यह वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक का होगा।

* पूरे वर्ष का ग्राहक बनना आवश्यक है।

* प्रार्थना है की आप आपका सम्पूर्ण पता स्पष्ट, सुवाच्य अक्षरों में प्रेषित करें।

* आपके पते में परिवर्तन हो तब शीघ्र सूचित कीजिए। आपका नया पता और ग्राहक क्र. सं. यदि 5 तारीख तक कार्यालय में आप द्वारा भेजा गया होगा तब पत्रिका नये पते पर प्रेषित की जाएगी।

* यह सत्संगपत्रिका प्रतिमास 12 तारीख को प्रकाशित की जाती है।

* हम प्रति अंक सावधानी से भेजते हैं, किन्तु यदि ता. 22 तक अंक आपको प्राप्त न हो तो आपके विभाग के डाकघर में लिखित शिकायत भेजिए और उसकी एक प्रति हमारे कार्यालय पर भी भेज दीजिए। यदि अंक शेष होगा तो दूसरी प्रति भेजी जाएगी।

* पत्रिका-सम्बन्धित सर्व पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर कीजिएः

कार्यालय, भगवत्कृपा-The Divine Grace
योगी डिवाइन सोसाईटी,
ए-103 अशोक विहार-III,
दिल्ली-110 052

साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदास जी द्वारा योगी डिवाईन सोसाईटी,
ए-103, अशोक विहार-III, दिल्ली-110052 फोनः 518838
मुद्रण स्थानः ठक्कर प्रिटिंग प्रेस, 2588, बस्ती पंजाबियान, सब्जी मण्डी, दिल्ली-11077